बिहार के लोक-नाट्य को जानें

प्राचीन काल से ही बिहार कला एवं कलाकारों का मुख्य केंद्र रहा है। ई.पू. छठी सदी की कृषि क्रांति ने गंगा घाटी के लोगों के जीवन में अवकाश के क्षण प्रदान किए। इसी अवकाश के क्षणों ने कलात्मक सृजन की प्रेरणा से कला की दिशा में सृजनशील वर्गों का अभ्युदय हुआ। गणतांत्रिक व्यवस्था में लोककला रूपों को उचित संरक्षण दिया गया। महाजनपद काल में अंश मिथिला और मगध कलाकारों का संरक्षण स्थल था। रामायण और महाभारत के साक्ष्यों के अनुसार, उस काल में नाट्य विधाएँ उपलब्ध थीं। ई.पू. तीसरी-चौथी सदी में रचित कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' में रंगोपजीवी तथा नाट्य नृत्य व संगीत के विविध क्रियाशीलनों का उल्लेख है। बौद्ध और जैन ग्रंथों में कई स्थलों पर भिक्षुओं और तपस्वियों के लिए नाट्य प्रदर्शन के देखने पर प्रतिबंध का निर्देश देखने को मिलता है, जो यह प्रमाणित करता है कि उस काल में नाट्य विधा का अस्तित्व था। पाटलिपुत्र और राजगृह के पुरातात्त्विक अवशेषों से प्राप्त मूर्तियाँ एवं वाद्ययंत्रों के प्रकार प्राचीन बिहार में प्रदर्शनकारी कला की समृद्ध परंपरा को इंगित करती हैं। चालुक्य सामंत नान्यदेव नाट्यकला के ज्ञाता थे। उन्होंने 1097 ई. के करीब मिथिला में कर्नाट राज्यवंश की स्थापना की। उन्होंने 'सरस्वती हृदयालंकार' नामक रचना की, जो भरत के नाट्य शास्त्र की टीका थी। ग्रंथ 'महाणवि' नामक नान्यदेव की रचना के बाद चौदहवीं शताब्दी में उन्हीं का रचित 'विश्व प्रदीप' ग्रंथ संगीत और नाट्य शास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। बारहवीं शताब्दी के बाद लोककला रूपों का लिखित प्रमाण हमें ज्योतिरीश्वर ठाकुर रचित 'वर्णरत्नाकर' से प्राप्त होता है। यह ग्रंथ तेरहवीं शती में मिथिला में लिखा गया।

बिहार में विभिन्न प्रकार के लोक-नाट्य प्रचलित हैं। उन्हें मुख्यत: तीन कोटियों के अंतर्गत

विभाजित किया जा सकता है : सामाजिक लोक-नाट्य धार्मिक लोक नाट्य और अन्यान्य लोक-नाट्य। सामाजिक लोक-नाट्य वे हैं, जिनकी कथावस्तु सामान्यतः पारिवारिक, सामाजिक जीवन से संबंधित होती है। इस प्रकार के लोक-नाट्यों में मुख्यतः जट-जटिन, सामा-चकेवा, जालिम सिंह का नाच, बिरहा, बिदेसिया आदि प्रमुख हैं। धार्मिक लोक-नाट्य वे हैं, जिनका संबंध प्रधानतः कीर्तन, ईश्वर गुण-चर्चा तथा आध्यात्मिक जीवन से रहता है। इस प्रकार नाट्यों का दर्शन से समाज के दर्शकों में सात्त्विक भावों का उदय होता है। इस प्रकार मनोरंजन के अतिरिक्त भगवद्-भजन इन नाट्यों के प्रधान उद्देश्य होता है। ऐसे नाटकों में रामलीला, रास, यात्रा, पार्टी इत्यादि महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अलावा ऐसे भी लोक नाट्य बिहार में हैं, जो मूलतः लोकगाथाएँ हैं, जिसका अभिनय रंगमंच पर होता है। इसमें हिरनी बिरनी, गोपीचंद आदि प्रमुख हैं। नाट्य-तत्त्वों की प्रधानता के कारण बिहार के लोक-नाट्य को हास्य-नाट्य गीति-नाट्य तथा नृत्य-नाट्य की श्रेणियों में भी रखा जा सकता है।

बिहार के अधिकांश लोक-नाट्य आज भी गीति-नाट्य हैं। शिष्ट नाट्यों के लिए प्रायः गद्य अपेक्षित हुआ करता है, परंतु लोक-नाट्य तो अपने गीतिमय स्वरूप में ही लोगों का मनोविनोद करते हैं। बिहार के प्रमुख लोक-नाट्यों का विवरण प्रस्तुत है—

बिदेसिया—बीसवीं सदी के दूसरे दशक में भोजपुर अंचल में भिखारी ठाकुर ने लोक-नाट्य के शिल्प में जीवन-नाट्य प्रयोग किया, वह 'बिदेसिया' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भिखारी ठाकुर रचित बारह नाटकों में बिदेसिया पहला नाटक था, जिसकी रचना उन्होंने 1917 में की। बिदेसिया भिखारी ठाकुर द्वारा लोक-नाट्य के शिल्प में विरचित नाट्य रूप है। इनके पूर्व बिदेसिया के मंचन की परंपरा भोजपुर अंचल में नहीं थी। बिदेसिया नाटक विस्थापन या आप्रवासन की समस्याओं पर केंद्रित है। नाटक कथानक एक नव ब्याहता स्त्री के पति का आर्थिक मजबूरी में परदेश चले जाने की विवशता और पति की बाट जोहती असहाय नायिका की अंतर्वेदना के इर्द-गिर्द घूमता है। परदेश में जाकर नायिका का पति एक दूसरी स्त्री के साथ रहकर घर बसा लेता है। उसके तीन बच्चे भी होते हैं। इधर उसकी पहली पत्नी विरह में संतप्त होने के कारण कराहती रहती है। वह एक पथिक के द्वारा अपने पति को वापस आने का संदेश भेजती है। वह पथिक उसके पति को बहुत फटकारता है और घर जाने को विवश करता है। अंत में वह घर के लिए प्रस्थान करता है और उसे पाकर उसकी स्त्री फूली नहीं समाती है।

बिदेसिया लोक-नाट्य में विरहिणी के पति-प्रेम, विरह-मिलन की उत्कंठा, अभिलाषा एवं अन्य मानसिक स्थितियों का बड़ा ही मार्मिक रूप देखने को मिलता है। यह लोक-नाट्य भोजपुरी भाषा में रचित है। इस नाटक में संवाद गद्य और गीत दोनों में है, लेकिन अधिकांश संवाद गेय हैं। भिखारी ठाकुर स्वयं एक कवि, अभिनेता, गायक, नाटककार और नाट्य शिल्पी थे। अत: उन्होंने अपने बिदेसिया नाट्य में इन सभी योग्यताओं और प्रतिभाओं का समावेश किया। बिदेसिया नाट्य में मल्लिक (सूत्रधार), लबार (विदूषक), समाजी (गायन-वादन मंडली) आदि के सहारे नाट्य के प्राय: सभी अभिनेता गाने में निपुण होते हैं। इस नाट्य में संगीत योजना विशिष्ट है। प्राय: भोजपुरी क्षेत्र के प्रचलित सभी लोक-संगीतों का समायोजन इस नाटक में किया गया है। आज भिखारी ठाकुर को गुजरे पैंतीस-छत्तीस वर्ष हो गए, किंतु बिदेसिया की लोकप्रियता में कमी नहीं आई है। आज भी उनके पुराने सहयोगी बिदेसिया नाटक का प्रदर्शन कर रहे हैं।

जट-जटिन— यह मिथिला का अति प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय नाट्य है। जट इस नाट्य का नायक है और जटिन उसकी नायिका। पात्र नामकरण के दो आधार हैं—एक तो मिथिला के महाराज शिव सिंह (1412-1416 ई.) के काल में जयट अथवा जट नामक एक बड़े गीतकार व संगीतज्ञ हुए, जो महाराज के आदेशानुसार महाकवि विद्यापति के पदों को उपयुक्त राग-रागिनियों में संगीतबद्ध करते थे। संभव है कि इसी संगीतज्ञ ने इस लोकगीति नाट्य की रचना की हो तथा स्वयं नायक के रूप में इसका अभिनय भी किया हो। दूसरा एक पौराणिक प्रसंग के अनुसार दक्ष प्रजापति के यज्ञ में सती का शरीर जल जाने के बाद भगवान् शंकर अत्यंत क्रोधाविष्ट हो गए। उनकी बड़ी-बड़ी जटाएँ धरती पर गिरने लगीं। उससे 'जटा' नामक एक दिव्य पुरुष का जन्म हुआ। जटा का कुल कृषक वंशी हो गया। इस जट कुल के दो वर्ग हुए, जो क्रमश: पंजाब व राजस्थान, दूसरा अजमेर, बीकानेर, मेरठ और मुजफ्फरनगर होते हुए नेपाल और मिथिला में आकर बसा। मिथिला की परंपरागत संस्कृति से इन जट वंशियों की संस्कृति भिन्न थी। इसलिए कुतूहलवश मिथिला की स्त्रियाँ उनके आचार-विचारों की अनुकृति में जट-जटिन का लोक-नृत्य करती हैं।

जट-जटिन एक गीति नाट्य है। इसका संवाद गीतों के माध्यम से होता है। जट-जटिन तो पहले प्रेमी-प्रेमिका के रूप में होते हैं, परंतु बाद में वे विवाह सूत्र में बँध जाते हैं। दांपत्य जीवन व्यतीत करने के बाद जट अपनी पत्नी जटिन के व्यक्तित्व को कुंठित कर उसकी स्वतंत्रता पर

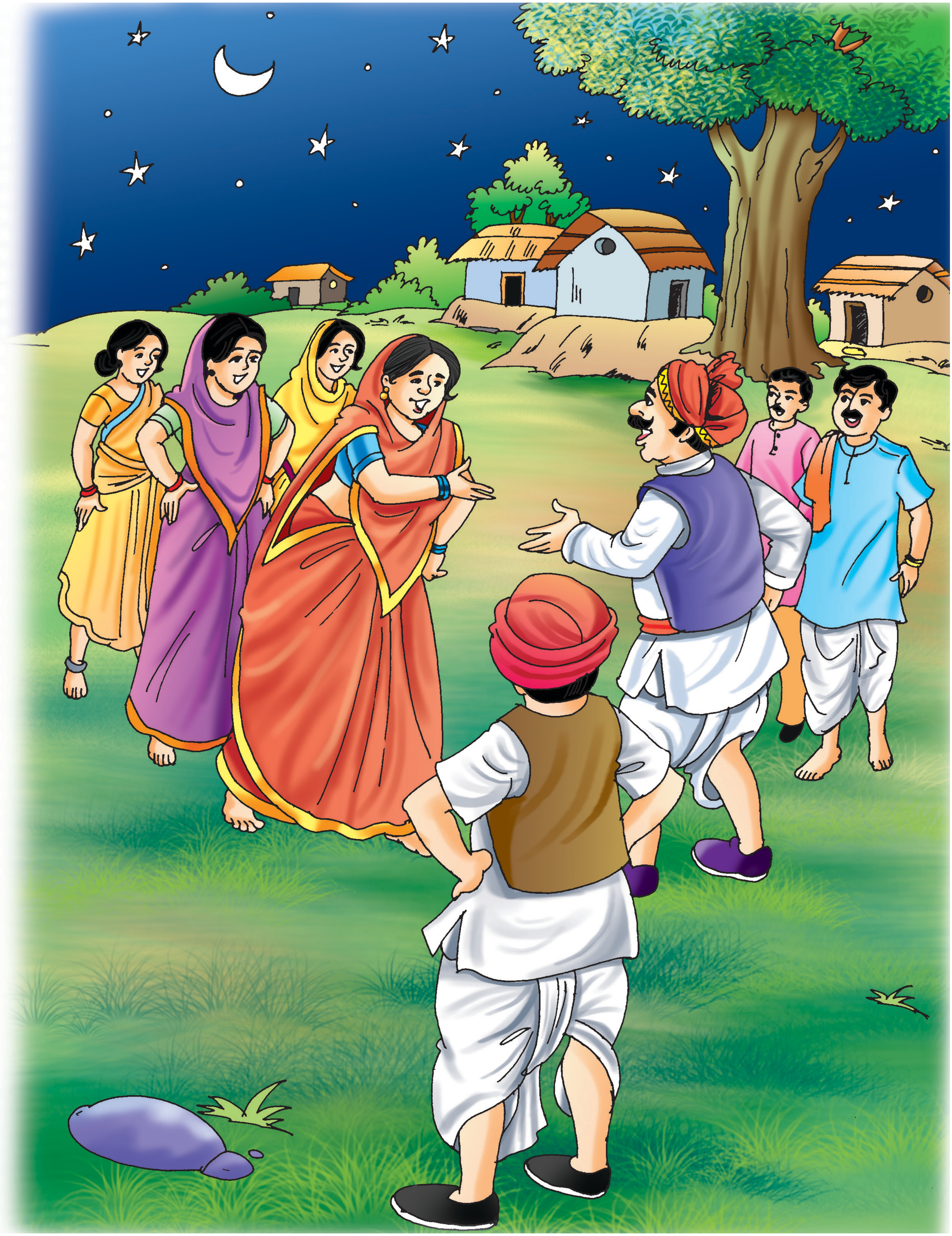

प्रतिबंध लगाना चाहता है, उसे अपने आदेश के अनुसार चलने को बाध्य करता है। पहले तो जटिन ऐसा करने से अस्वीकार करती है, परंतु कालांतर में वह जट के हाथ की कठपुतली बन जाती है।

जट-जटिन लोक-नाट्य के संग एक लोक-विश्वास जुड़ा हुआ है। वर्षा के अभाव में जब धरती तवे के समान जलती रहती है और कृषक गण निराश तथा हतोत्साहित हो जाते हैं तो स्त्रियाँ इस गीति नाट्य के अभिनय की योजना बनाती हैं। उनका ऐसा दृढ़ विश्वास है कि इस गीति नाट्य, अर्थात् जट-जटिन अभिनय तथा गीतों की माधुरी से इंद्र भगवान् प्रसन्न होंगे और पानी बरसाएँगे। इस नृत्य में स्त्रियाँ दो दलों में विभक्त होकर संवाद शैली में जट और जटिन की गाथा नाच-नाचकर गाती हैं। इसका अभिनय लगभग दस-ग्यारह बजे रात्रि से प्रारंभ करती हैं और अभिनय की समाप्ति पर रात्रि के अवसान काल में कुछ मेढकों को ऊखल में रखकर उन्हें कूटती हैं और चुपके से किसी झगड़ालू व्यक्ति के दरवाजे पर फेंक देती हैं। जिसके दरवाजे पर उन्हें फेंका जाता है, वह स्वभावतः गाली देता है। लोगों की धारणा है कि वह जितनी अधिक गालियाँ देगा, वर्षा भी उसी अनुपात में अधिक होगी। चूँकि जट-जटिन लोक-नाट्य का अभिनय प्रधानतः वर्षा लाने के लिए किया जाता है, अतः इसे वर्षाकालीन नाट्य माना जाएगा; परंतु मनोरंजन के लिए चैत्र-वैशाख अथवा आश्विन-कार्तिक की मधुर शीतल चाँदनी रातों में भी इसका अभिनय किया जाता है।

गीतों से परिपूर्ण यह लोक-नाट्य मिथिला की निजी देन है। इसकी कथा-वस्तु में जट-जटिन के पारिवारिक तथा दांपत्य जीवन के चित्रण के माध्यम से वैवाहिक जीवन की जटिलता, पुरुषों की स्वेच्छाचारिता, स्त्रियों की विवशता, स्वतंत्रताप्रियता, स्त्रियों की आभूषणप्रियता, सुख-दुःख की व्यापकता आदि का मार्मिक रूप विवेचित किया गया है। जट-जटिन नाट्य में जट का अभिनय कोई लड़का करता है, जबकि जटिन की भूमिका स्त्रियाँ करती हैं। गीतात्मक कथोपकथन शैली में पहले एक पक्ष से प्रश्न पूछा जाता और फिर दूसरे पक्ष द्वारा उसका उत्तर दिया जाता है। प्रश्नोत्तर में सभी युवतियाँ झुक-झुककर हस्त एवं अंग-संचालन करती हैं।

इस नाट्य के लिए किसी विशेष रंगमंच, प्रसाधन, आभूषण एवं भड़कीले परिधान की आवश्यकता नहीं होती। किसी आँगन अथवा दरवाजे के प्रांगण से ही रंगमंच का काम लिया जाता है। उनके वस्त्र अति साधारण होते हैं। भरसक दैनंदिन जीवन में प्रयुक्त होनेवाले वस्त्र।

सामा चकेवा—इस लोक-नृत्य को ठेठ भाषा में सामा-चकेवा कहा जाता है। यह भी एक प्रकार का रीति नाट्य है। इस नाट्य को ऋतुपरक गीति नाट्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। मिथिला क्षेत्र की बालिकाओं एवं युवतियों का यह मनोरंजक नाट्य कार्तिक शुक्ल षष्ठी से कार्तिक पूर्णिमा तक बड़े ही उत्साह, उल्लास तथा उमंग के साथ मनाया जाता है। इस नाट्य में सामा और चकेवा मुख्य पात्र हैं। सामा स्त्री पात्र है और चकेवा पुरुष पात्र। इन दोनों के अतिरिक्त चुगला, ढोलिया, भरिया, सतभइया, खड़रिच, पनतीतर, झाँझी कुत्ता, भैया बटतकनी, मलिनिया और वृंदावन इसके अन्य पात्र हैं। वर्तमान में यह लोक-नाट्य जिस रूप में मिथिला में विद्यमान है, वह अन्य परंपरागत लोक वाद्यों से भिन्न है। इस लोक नाट्य में मानवीय पात्रों का अभिनय न होकर उनकी मिट्टी की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। कथानक के अनुसार बालिकाएँ या स्त्रियाँ उन प्रतीकात्मक आकृतियों से ही कठपुतली के नाच की तरह सूत्रधार के रूप में मनोवांछित अभिनय करवाती हैं। वह कभी वृंदावन में आग लगाती है, तो कभी सतभइया की श्लाघा करती है तो कभी चुराल की निंदा करती हुई उसमें आग लगाती है। इस दृष्टि से यह नाट्य 'पुत्तलिका नृत्य' से बहुत साम्य रखता है।

छठ पर्व के प्रात:काल से किशोरियाँ सामा-चकेवा के पात्रों की आकृतियाँ बनाना प्रारंभ करती हैं। रात में भोजनोपरांत प्रत्येक घर की बालिकाएँ इन सभी आकृतियों एवं एक जलते दीपक को बाँस के बने एक विशेष पात्र (चेगेर) में रखकर उसे सिर पर रख लेती हैं और गीत गाती हुई आँगन से बाहर होती हैं तथा सभी एक सार्वजनिक स्थल तालाब के किनारे या कुएँ की जगत पर एकत्र होकर इस लोक-नृत्य का संपादन गीतमय वातावरण के साथ करती हैं। इस प्राकृतिक सामा को खेलकर वे बालिकाएँ पुन: गीत गाती हुई अपनी-अपनी आकृतियों को लेकर घर लौट जाती हैं। यह कार्यक्रम नित्य रात को ही होता है। पूर्णमासी की रात्रि में इन सभी आकृतियों को तोड़-फोड़कर किसी जोते हुए खेत अथवा जलाशय में विसर्जित कर दिया जाता है।

सामा-चकेवा का प्रचलन मिथिला में प्राचीन काल से है। इसका उल्लेख 'पद्मपुराण' में मिलता है। मिथिला में प्रचलित सामा-चकेवा के वर्तमान रूप के आधार पर यह प्रतीत होता है कि भाई-बहन के मधुर एवं आदर्श संबंध की स्थापना ही इस लोक-नाट्य का प्रधान उद्देश्य है। परंतु 'स्कंदपुराण' के आधार पर सामा-चकेवा भाई-बहन नहीं अपितु पति-पत्नी हैं। सामा के पिता कृष्ण थे और पति चारू-वक्र अथवा चकेवा। किसी दुष्ट ने पिता कृष्ण से यह मिथ्या शिकायत की कि

सामा किसी मुनि से प्रेम करती है। इस पर उन्होंने क्रुद्ध होकर पुत्री सामा को श्राप दे दिया। फलस्वरूप सामा पक्षी बन गई। बहन के इस रूप को देखकर भाई शंब बहुत पीड़ित हुआ। अंतत: शंब ने कार्तिक पूर्णिमा की रात को अपनी बहन को इस जाल से मुक्त किया।

इस लोक-नाट्य का मिथिला के पारिवारिक जीवन एवं लोक-आस्था के साथ अटूट संबंध दिखाई पड़ता है, साथ ही मिथिला के लोक-जीवन की एक सुंदर झाँकी मिलती है।

नारदी—'नारदी' बिहार का एक लोक-नाट्य है। यह मूलत: भक्तिपरक नृत्यगान है। इसमें राधा-कृष्ण विषयक रास गीत, गीतगोविंद की पदावली, विद्यापति रचित रासगीत तथा शिव-पार्वती से जुड़े हुए प्रसंग अंग-संचालन तथा पदचाप द्वारा नृत्य की भाव-भंगिमा में गाकर प्रस्तुत किए जाते हैं। गानों के बीच में राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती आदि देवी-देवताओं का वेष धारण कर भाव के साथ अभिनय किया जाता है। नारदी वास्तव में बोल-प्रधान नहीं, अपितु स्वर तथा भाव-प्रधान लोक-नाट्य विद्या है। नारदी की पहचान गीतों से नहीं, लय या घुनी से की जाती है। इसमें मुख्य वाद्य पखावज या मृदंग होता है। उसके साथ झाल और हारमोनियम रहता है। जैसा कि अनुमान किया जा सकता है, पखावज व मृदंग प्राच्य वाद्य हैं, जिसके इस नाट्य कला से संबद्ध होना इसके प्राचीन काल के अस्तित्व का बोधक है। हारमोनियम जैसे पाश्चात्य व आधुनिक वाद्य निश्चित रूप से नारदी में बाद में जुटे होंगे। नारदी की प्रस्तुति में स्वर कायम एवं आलाप जैसी ज्ञान क्रियाएँ हारमोनियम के सहारे शुरू की जाती हैं। जब पखावज और झाल के ताल के साथ गायन उठान पर होता है तो हारमोनियम का स्वर गौण तथा बाद में अदृश्य हो जाता है।

डोमकछ—डोमकछ या डोमकच स्त्रियों द्वारा विवाह के अवसर पर की जानेवाली आनुष्ठानिक नृत्य-नाटिका है। इसके प्रस्तोता और दर्शक केवल स्त्रियाँ ही होती हैं। मिथिला क्षेत्र में इसे डोमकच तथा भोजपुरी भाषी अंचल में इसे नकटौरा, नकटा, जलवा तथा रतजगा कहा जाता है। जब लड़के की बारात जाती है, उस रात घर की और पास-पड़ोस की स्त्रियाँ एकत्र होकर इसका प्रदर्शन करती हैं। इस लोक-नाट्य का उद्देश्य होता है रात भर जागकर घर की रखवाली करना तथा संग-संग मनोरंजन भी करना। डोमकच एक आनुष्ठानिक विधान के रूप में भी प्रचलित है। महिलाएँ कपड़े या चारपाई के पाँव को लड़का के प्रतीक के रूप में जलुवा बनाती हैं। सिर पर काला कपड़ा लपेट दिया जाता है। कौड़ी की आँखें बनाई जाती हैं। आँख में काजल लगाया जाता है। जलुवा के जन्म से लेकर विवाह तक का स्वाँग प्रस्तुत किया जाता है।

विभिन्न संस्कार के गीत गाए जाते हैं। लोक-विश्वास है कि यदि जलुवा सुंदर होगा तो उसकी दुलहन भी सुंदर ही मिलेगी। जलुवा की शादी के बाद उसके पुत्र लुखुषा के जन्मोत्सव का भी अभिनय किया जाता है। वैद्य की भूमिका में पुरुष वेश में महिला आती है। वैद्य जो जलुआ की नाड़ी-परीक्षण-क्रम में छेड़छाड़ करता है। यह बात दारोगाजी तक पहुँचती है। दारोगाजी अपनी पूरी वरदी में सिपाहियों के साथ आते हैं। वैद्य की हरकतों को देखकर दारोगाजी अपने दल-बल के साथ उन्हें खदेड़ते तो हैं, किंतु वह भी उसी कृत्य को करते हैं, जिसका आरोप वैद्य पर लगाया गया था। इस प्रकार यह प्रहसन रात में जोरदार हँसी-ठहाकों के बीच कई घंटों तक चलता है। बीच-बीच में नृत्य और गीत इस प्रदर्शन को सरस बनाता है। यह नृत्य संयोजित और संरचनाबद्ध नहीं होता है। वाद्यों में सिर्फ ढोलक का प्रयोग किया जाता है।

बगुली—बगुली बिहार के मगध अंचल की नाटकीय लोक विधा है। यह भी स्त्रियों के द्वारा प्रदर्शित होता है। क्वार के महीने में चाँदनी रात में गाँव के मैदान में या घर के आँगन में स्त्रियाँ एकत्र होकर इसका प्रदर्शन करती हैं। इसके प्रदर्शन में एक स्त्री बगुली बनती है। वह लंबा घूँघट निकाल लेती है और घूँघट के भीतर हाथ डालकर मुँह के पास से उसे चोंच की आकृति बना लेती है। चोंच बराबर हिलती रहती है। दोनों तरफ औरतों का दल बैठा रहता है। बगुली कभी कूदकर इस दिशा में जाती है और कभी उस दिशा में। जिस ओर बगुली मुड़ती है, उस ओर उसका अन्य महिलाओं से प्रश्नोत्तर चलता है।

बिरहा—बिरहा भी एक प्रकार का गीत नाट्य है। जिसका संवाद प्राय: पूर्वी धुन में गा-गाकर किया जाता है। एक धोबी-धोबिन के दांपत्य जीवन की विविधता ही इस लोक-नाट्य की प्रमुख कथावस्तु है। नाट्य के पूर्वार्ध में दंपती द्वय का जीवन कलहपूर्ण, अशांत एवं कटुतायुक्त प्रदर्शित किया जाता है; परंतु नाट्य के उत्तरार्ध में दोनों के आदर्श रूपों की प्रस्तुति की जाती है। अंत में पति-पत्नी परस्पर एक-दूसरे को भगवान् की आराधना करने का आग्रह करते हैं और वे सांसारिक झंझटों से अलग रहकर भगवद्-भजन करने का प्रयास करते हैं। अन्य लोक-नाट्यों से भिन्न बिरहा में ईश्वर-स्मरण एवं गुणानुवाद की प्रधानता है। यह लोक-नाट्य पुरुष के द्वारा अभिनीत होता है। धोबिन का अभिनय पुरुष ही नारी रूप-रंग तथा वेशभूषा में करते हैं। किसी चाँदनी रात में ग्यारह-बारह बजे के उपरांत इसका अभिनय प्रारंभ होता है।

जालिम सिंह—जालिम सिंह लोक-नाट्य मुख्यत: भोजपुरी भाषी क्षेत्र का है, किंतु मिथिला

में भी इस नाटक का प्रदर्शन किया जाता है। इसका नाटक का कथोपकथन गीतात्मक है। इस नायक जालिम सिंह है। जालिम सिंह नाटक को 'जालिम सिंह का नाच' कहकर भी संबोधित किया जाता है। जालिम सिंह और मूँगा का प्रेम-व्यापार ही नाटक का मुख्य आधार है। रूपाकर्षण से प्रारंभ होनेवाले प्रेम की अंतिम परिणति विवाह में होती है। जाति, परिवार एवं सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन कर जालिम सिंह मूँगा के प्रेम में उन्मत्त होकर किसी भी मूल्य पर उससे विलग नहीं रहना चाहता है। इस लोक-नाट्य का प्रदर्शन किसी विशिष्ट मंच या यवनिका के स्थान पर खुले आकाश के नीचे चाँदनी ज्योति एवं एकाध लालटेन के प्रकाश में किया जाता है। हारमोनियम, ढोलक और मजीरा इसके प्रमुख वाद्य होते हैं। यह शृंगार रस प्रधान लोक नाट्य है।

हिरनी-बिरनी—हिरनी-बिरनी एक वीरता-गर्भित प्रेमगाथा लोक-नाट्य है। इसमें हिरनी-बिरनी और पोसन सिंह की प्रेम कथा वर्णित है। हिरनी-बिरनी दो बहनें हैं, जो जाति की नटिन हैं और गुजरात शहर की रहने वाली हैं। इन बहनों का संकल्प है कि जो इनकी मोहिनी भैंस को नाथ देगा, उसी के साथ दोनों विवाह करेंगी। इस संकल्प की घोषणा बावनगढ़, बंबई, बंगाल, पटना, छपरा व मिर्जापुर आदि अखाड़ों में जाकर करती है; परंतु कहीं के पहलवान उस भैंस को नाथने में समर्थ नहीं होते हैं। अंत में हिरनी-बिरनी दिल्ली पहुँचकर वहाँ के अखाड़े के पहलवानों को धिक्कारती हैं। इस पर उस अखाड़े के पहलवानों के गुरु उज्जैन सिंह को भैंस के नाथने में असफल होने के बाद उनका शिष्य पोसन सिंह इस कार्य में सफल हो जाता है और फिर हिरनी-बिरनी उससे शादी कर लेती हैं। माता-पिता, भाई, पत्नी आदि सभी को रोते-बिलखते छोड़कर क्षत्रिय पोसन सिंह अंतत: हिरनी-बिरनी के प्रेम में पागल होकर उनके संग विवाह कर गुजरात चला जाता है।

रामलीला—रामलीला भगवान् श्रीराम की विभिन्न लीलाओं एवं चेष्टाओं पर आधारित लोक-नाट्य है। मिथिला जगज्जननी जानकी की मातृभूमि है, संभवत: इसीलिए राम और जानकी की कथा मिथिलावासियों को अत्यंत प्रिय है। रामलीला लोक-नाट्य का आधार ग्रंथ गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस है। रामलीला का प्रदर्शन लगभग एक माह तक होता है। यह नाट्य व्यावसायिक मंडली के कलाकारों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। हारमोनियम की सहायता से आगे-आगे रामायण गानेवाले व्यक्ति को व्यास कहते हैं और समस्त रामलीला पार्टी के व्यवस्थापक को महेश। नाटक खेलने वाले पात्रों के संवाद तो अधिकांशत: गद्य में होते हैं, परंतु

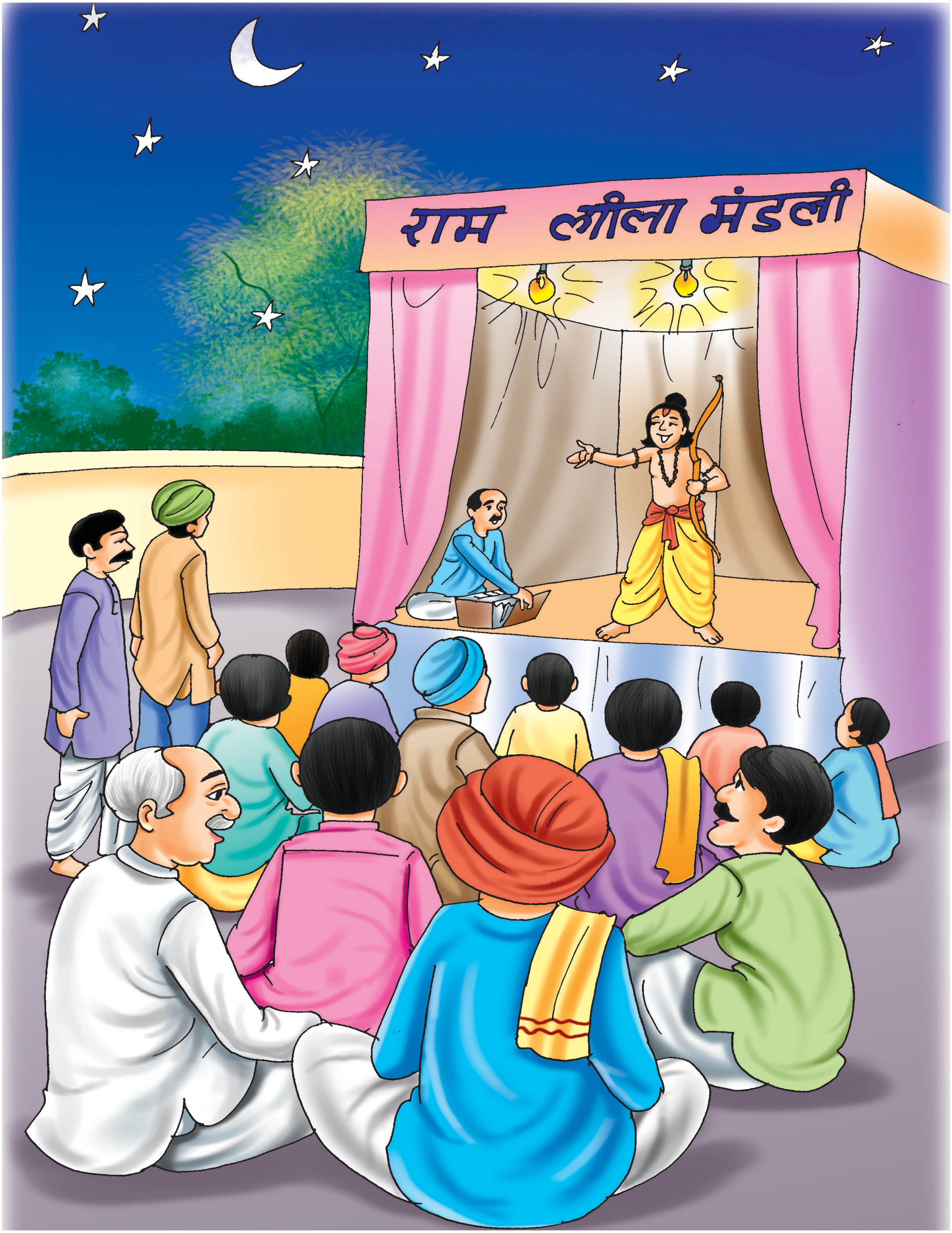
राम लीला मंडली

भावात्मक अंश पद्य में ही कहे जाते हैं। प्रतिदिन लगभग चार–पाँच बजे संध्या में रामलीला प्रारंभ होता है, जो तीन–चार घंटों तक चलती है। रामलीला में मुख्य कथा के संग मनोरंजन के लिए अनेक गीत एवं प्रहसनों की भी व्यवस्था रहती है। विशेषकर रामजन्म, धनुष यज्ञ, सीता–हरण, लंका–दहन, रावण–वध एवं राम के राज्याभिषेक के प्रदर्शन के दिन दर्शकों के हृदय–सागर में विभिन्न भावनाओं की तरंगें उद्वेलित हो उठती हैं। राज्याभिषेक के दिन तो लोग भक्ति–विह्वल हो राम, लक्ष्मण और सीता की भूमिका करनेवाले पात्रों को साक्षात् देवस्वरूप मानकर उन पर रुपए, पैसे, कपड़े आदि का चढ़ौआ चढ़ाते हैं। रामलीला की समाप्ति के पश्चात् राम, लक्ष्मण, सीता तथा हनुमान की भूमिका करनेवाले पात्र घोड़े पर बैठकर गाँव के प्रत्येक दरवाजे पर घूमते हैं और लोगों से पैसा एकत्र करते हैं, जिसे 'बिलौकी माँगना' कहा जाता है। लोग इन पात्रों के द्वार पर आगमन को भाववश साक्षात् प्रभु का आगमन समझते हैं तथा उन लोगों का यथोचित सम्मान कर श्रद्धावनत हो चरणों पर दक्षिणा अर्पित करते हैं।

वास्तविक रूप से देखा जाए तो रामलीला मूलतः मिथिला का ही लोक–नाट्य नहीं है। बिहार के अलावा अन्य प्रांतों के संग विदेशों में भी किसी–न–किसी रूप में एक लोककला के रूप में इसका प्रदर्शन होता है। अतः रामलीला का मंचन क्षेत्र अत्यंत विस्तृत व व्यापक है। यह अवश्य कहा जा सकता है कि मिथिला की ही व्यावसायिक मंडलियाँ सुदूर क्षेत्रों में जाकर लोक–नाट्य की इस विधा को जीवित रखे हुए हैं। इस लोक–नाट्य में रसमयता के अतिरिक्त धर्म–प्रवणता भी कूट–कूटकर भरी हुई है।

□□□